शाश्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गाय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(*ऐच्छिकपाठ्यक्रमः*)

शाश्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गाय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(ऐच्छिकपाठ्यक्रमः)



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 81-7450-472-9

प्रथम संस्करण
जनवरी 2006 माघ 1927

पुनर्मुद्रण
अप्रैल 2007 बैसाख 1929
अक्तूबर 2007 आश्विन 1929
जनवरी 2008 पौष 1930

PD 6T ML

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

रु. 65.00

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
सहायक संपादक : *एम. लाल*
सहायक उत्पादन अधिकारी : *राजेन्द्र चौहान*

चित्रांकन
प्रदीप नायक

आवरण
आलोक हरि

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा डी.के.प्रिन्टर्स, 5/16, कीर्ति नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली 110 015 द्वारा मुद्रित।

पुरोवाक्

2005 ईस्वीयां राष्ट्रिय-पाठ्यचर्या-रूपरेखायाम् अनुशंसितं यत् छात्राणां विद्यालयजीवनं विद्यालयेतरजीवनेन सह योजनीयम्। सिद्धान्तोऽयं पुस्तकीय-ज्ञानस्य तस्याः परम्परायाः पृथक् वर्तते, यस्याः प्रभावात् अस्माकं शिक्षाव्यवस्था इदानीं यावत् विद्यालयस्य परिवारस्य समुदायस्य च मध्ये अन्तरालं पोषयति। राष्ट्रियपाठ्यचर्यावलम्बितानि पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकानि अस्य मूलभावस्य व्यवहारदिशि प्रयत्न एव। प्रयासेऽस्मिन् विषयाणां मध्ये स्थितायाः भित्तेः निवारणं ज्ञानार्थं रटनप्रवृत्तेश्च शिथिलीकरणमपि सम्मिलितं वर्तते। आशास्महे यत् प्रयासोऽयं 1986 ईस्वीयां राष्ट्रिय-शिक्षा-नीतौ अनुशंसितायाः बालकेन्द्रितशिक्षाव्यवस्थायाः विकासाय भविष्यति।

प्रयत्नस्यास्य साफल्यं विद्यालयानां प्राचार्याणाम् अध्यापकानाञ्च तेषु प्रयासेषु निर्भरं यत्र ते सर्वानपि छात्रान् स्वानुभूत्या ज्ञानमर्जयितुं, कल्पनाशीलक्रियाः विधातुं, प्रश्नान् प्रष्टुं च प्रोत्साहयन्ति। अस्माभिः अवश्यमेव स्वीकरणीयं यत् स्थानं, समयः, स्वातन्त्र्यं च यदि दीयेत, तर्हि शिशवः वयस्कैः प्रदत्तेन ज्ञानेन संयुज्य नूतनं ज्ञानं सृजन्ति। परीक्षायाः आधारः निर्धारित-पाठ्यपुस्तकमेव इति विश्वासः ज्ञानार्जनस्य विविधसाधनानां स्रोतसां च अनादरस्य कारणेषु मुख्यतमः। शिशुषु सर्जनशक्तेः कार्यारम्भप्रवृत्तेश्च आधानं तदैव सम्भवेत् यदा वयं तान् शिशून् शिक्षणप्रक्रियायाः प्रतिभागित्वेन स्वीकुर्याम, न तु निर्धारितज्ञानस्य ग्राहकत्वेन एव।

इमानि उद्देश्यानि विद्यालयस्य दैनिककार्यक्रमे कार्यपद्धतौ च परिवर्तनमपेक्षन्ते। यथा दैनिक-समय-सारण्यां परिवर्तनशीलत्वम् अपेक्षितं तथैव वार्षिककार्यक्रमाणां निर्वहणे तत्परता आवश्यकी येन शिक्षणार्थं नियतेषु कालेषु वस्तुतः शिक्षणं भवेत्। शिक्षणस्य मूल्याङ्कनस्य च विधयः ज्ञापयिष्यन्ति

यत् पाठ्यपुस्तकमिदं छात्राणां विद्यालयीय-जीवने आनन्दानुभूत्यर्थं कियत् प्रभावि वर्तते, न तु नीरसतायाः साधनम्। पाठ्यचर्याभारस्य निदानाय पाठ्यक्रमनिर्मातृभिः बालमनोविज्ञानदृष्ट्या अध्यापनाय उपलब्ध-कालदृष्ट्या च विभिन्नेषु स्तरेषु विषयज्ञानस्य पुनर्निर्धारणेन प्रयत्नो विहितः। पुस्तकमिदं छात्राणां कृते चिन्तनस्य, विस्मयस्य, लघुसमूहेषु वार्तायाः, कार्यानुभवादि-गतिविधीनां च कृते प्राचुर्येण अवसरं ददाति। पाठ्यपुस्तकस्यास्य विकासाय विशिष्टयोगदानाय राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषद् भाषापरामर्शदातृसमितेः अध्यक्षाणां प्रो. नामवरसिंहमहोदयानां, संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां मुख्यपरामर्शकानां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहाभागानां, पाठ्यपुस्तकनिर्माणसमितेः सदस्यानाञ्च कृते हार्दिकीं कृतज्ञतां ज्ञापयति। पुस्तकस्यास्य विकासे नैके विशेषज्ञाः अनुभविनः शिक्षकाश्च योगदानं कृतवन्तः, तेषां संस्थाप्रमुखान् संस्थाश्च प्रति धन्यवादो व्याह्रियते। मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य माध्यमिकोच्चशिक्षाविभागेन प्रो. मृणालमिरी प्रो. जी. पी. देशपाण्डेमहोदयानाम् आध्यक्ष्ये संघटितायाः राष्ट्रिय-पर्यवेक्षणसमितेः सदस्यान् प्रति तेषां बहुमूल्ययोगदानाय वयं विशेषेण कृतज्ञाः।

पाठ्यपुस्तकविकासक्रमे उन्नतस्तराय निरन्तरं प्रयत्नशीला परिषदियं पुस्तकमिदं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं कर्तुं विशेषज्ञैः अनुभविभिः अध्यापकैश्च प्रेषितानां सत्परामर्शानां सदैव स्वागतं विधास्यति।

नवदेहली — निदेशकः
जनवरी 2006 — राष्ट्रियशैक्षिकानुसंधानप्रशिक्षणपरिषद्

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

मुख्य परामर्शक

राधावल्लभ त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रोफेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य

राजेन्द्र मिश्र, *पूर्व कुलपति,* सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

दीप्ति त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

जगदीश सेमवाल, *निदेशक,* वी. वी. वी. आई. एस., एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, पंजाब।

योगेश्वर दत्त शर्मा, सेवानिवृत्त *रीडर,* हिन्दू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सुरेश चन्द्र शर्मा, *प्राचार्य,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, शक्ति नगर, दिल्ली।

छविकृष्ण आर्य, *उपप्रधानाचार्य,* केन्द्रीय विद्यालय, सेकेण्ड शिफ्ट, एण्ड्रयूज गंज, नयी दिल्ली।

सरोज गुलाटी, *पी.जी.टी.,* कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल, अशोक विहार, फेज–III, दिल्ली।

पी. एन. झा, *पी.जी.टी.,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, आदर्श नगर, दिल्ली।

अनिता शर्मा, *पी.जी.टी.,* विवेकानन्द पब्लिक स्कूल, आनन्द विहार, दिल्ली।

सदस्य – समन्वयक

कमलाकान्त मिश्र, *प्रोफेसर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उन सभी विषय-विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है जिन्होंने इस पुस्तक के निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दिया है।

परिषद् प्रो. श्रीनिवास रथ, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, को. ल. व्यासराय शास्त्री (रवीन्द्र नाथ टैगोर के गीताञ्जलि के संस्कृत अनुवादक) प्रभृति आधुनिक साहित्यकारों की भी आभारी है जिनकी कृतियों से प्रस्तुत पुस्तक में पाठ्य सामग्री संकलित की गई है।

पुस्तक की योजना-निर्माण से लेकर प्रकाशन पर्यन्त विविध कार्यों में यथासमय सक्रिय भूमिका निभाने के लिए संस्कृत पाठ्यपुस्तक समिति के समन्वयक व उनके विभागीय सहयोगी कृष्ण चन्द्र त्रिपाठी, *प्रवाचक*, रणजित बेहेरा, *प्रवक्ता* तथा दयाशंकर तिवारी, *प्रोजेक्ट एसोसिएट* साधुवाद के पात्र हैं।



भूमिका

संस्कृत विश्व की अत्यन्त प्राचीन भाषा है। भारतीय संस्कृति का स्रोत भी यही भाषा है। इसमें न केवल हमारे प्राचीन उदात्त संस्कार निहित हैं, अपितु हमारा गम्भीर शास्त्र-ज्ञान एवं पारलौकिक चिन्तन भी इसी भाषा में उपलब्ध है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जितने ग्रन्थ इस भाषा में लिखे गए हैं, उतने विश्व की अन्य किसी भी प्राचीन भाषा में नहीं मिलते। संस्कृत का साहित्य ऋग्वेद काल से लेकर आज तक अबाध गति से प्रवाहित होता रहा है। वेद, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निर्वचनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्यामिति, षड्दर्शन आदि के साथ-साथ यह साहित्य कोमल काव्यानुभूतियों से ओत-प्रोत गद्य-पद्य की उर्वर जन्मभूमि है।

संस्कृत भाषा ने समस्त भारत की आधुनिक भाषाओं को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पर्याप्त प्रभावित किया है। मध्यकाल में प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य को तो संस्कृत के बिना समझ पाना बहुत कठिन था। आधुनिक भारतीय साहित्य का अधिकांश भाग संस्कृत साहित्य की ही देन है। आधुनिक भारत की लगभग सभी भाषाओं ने संस्कृत से शब्दावली ग्रहण की है। विदेशों में भी संस्कृत की महत्ता बड़े आदर से स्वीकृत की गई है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा का सम्यक् अनुशीलन हो रहा है।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संस्कृत का बहुत महत्त्व है। यद्यपि भारतवर्ष में क्षेत्रीय विषमताएँ एवं विविधताएँ अनन्त हैं, तो भी जिन तत्त्वों का इस देश को एक सूत्र में बाँधे रखने में सर्वाधिक योगदान है, उनमें संस्कृत भाषा तथा इसका साहित्य प्रमुख है। पुराणों में भारत के समस्त भूगोल को इस रूप में चित्रित किया गया है कि उसे पढ़कर प्रत्येक भारतीय के मन में अपने देश के प्रति अगाध आस्था एवं श्रद्धा स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। संस्कृत साहित्य की मूल चेतना समूचे भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखने की रही है। इतना ही नहीं, **'वसुधैव**

कुटुम्बकम्' (सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार है) अथवा **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** (हम सारे विश्व को श्रेष्ठ बनाएँ) जैसी मर्मस्पर्शी उक्तियाँ मानव-मात्र के प्रति आत्मीयता के भाव व्यक्त करती हैं।

वेद सारे विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय माना जाता है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त महत्त्वपूर्ण है। इन्हीं की दृढ़ आधारशिला पर भारतीय धर्म एवं संस्कृति का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है। भारतीयों के आचार-विचार, रहन-सहन, धर्म-कर्म आदि के रहस्यों को भलीभाँति जानने के लिए वेदों का ज्ञान परमावश्यक है। भारतीय समाज में वेद की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। भारतीय परम्परा में पवित्र ज्ञानराशि वेद को अपौरुषेय (मनुष्य द्वारा अरचित) तथा शाश्वत माना गया है किन्तु भारतीय परम्परा के विपरीत पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का रचनाकाल निश्चित करने के अथक प्रयास किए हैं। प्रो. मैक्समूलर ने वेदमन्त्रों की रचना 1200 वर्ष ई.पू., प्रो. विण्टरनित्स ने 2000 वर्ष ई. पू. तथा प्रो. हरमन जैकोबी ने कृत्तिका नक्षत्रों की वैदिक स्थिति के आधार पर वेदमन्त्रों की रचना 4500 वर्ष ई.पू. निश्चित की है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विवेचन के अनुसार यह काल और भी पूर्ववर्ती होना चाहिए। ऋग्वेद का गम्भीर अध्ययन करने के बाद उन्होंने मृगशिरा नक्षत्र में वसन्त सम्पात होने के अनेक संकेत एकत्रित किए। उन्हीं के आधार पर इन्होंने वेदमन्त्रों की सर्वप्रथम रचना का काल 6000-4000 वर्ष विक्रम संवत् पूर्व माना।

भारतीय परम्परा के अनुसार समग्र वैदिक ज्ञानराशि पहले विभाजित नहीं थी। लोकोपकार की दृष्टि से द्वापर युग के अन्त में महर्षि वेदव्यास ने इसका त्रिधा विभाजन किया - ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। ऋग्वेद में स्तुतिपरक मन्त्रों का संकलन किया गया। ऋक् का अर्थ होता है - स्तुति। इसी के आधार पर इस वेद का नाम ऋग्वेद रखा गया - **ऋचां वेदः ऋग्वेदः**। यज्ञ में उपयोगी मन्त्रों के संकलन को यजुर्वेद कहा गया। यजुष् का अर्थ है - यजन (यज्ञ) में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र। सामन् का अर्थ, देवताओं को प्रसन्न करने वाले मन्त्र हैं। अतः ऐसे साममन्त्रों के संकलन को सामवेद कहा गया। कालान्तर में ऋक्, यजुष् और सामन् के

माध्यम से तीनों रूपों में व्यवस्थित ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को **त्रयी** की संज्ञा से अभिहित किया गया। किंचित् काल पश्चात् महर्षि अथर्वा ने अनेकविध मन्त्रों का एक पृथक् संकलन तैयार किया जो अथर्ववेद के नाम से प्रख्यात हो गया। इसमें ब्रह्मा, परमात्मा, राजा, राज्यशासन, संग्राम, नाना देवता, यज्ञ, राष्ट्रीय चेतना, औषधोपचार, आधि-व्याधि निवारण आदि अनेक प्रकार के सांसारिक विषय समाविष्ट हैं।

संस्कृत काव्य की परम्परा

काव्य के बीज वैदिक सूक्तों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्र, रुद्र, सवितृ, सोम, विष्णु, उषा आदि देवों की भावानुप्राणित स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये साङ्गोपाङ्ग संस्कृत कविता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ऋग्वेद की यह कविता ही विश्व की प्रथम कविता है। इस कविता में माधुर्य का अनुपम परिपाक, प्राकृतिक सुषमा के अद्‌भुत चित्र तथा जनजीवन की करुण एवं रसपूर्ण संवेदनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। सूर्या तथा सोम के विवाह-प्रसंग (ऋ . 10.34) में प्रेम एवं सौन्दर्य की तथा अक्षसूक्त में एक जुआरी के मन की गहरी व्यथा की अभिव्यक्ति किस सहृदय के मन को नहीं छूती। इसी दृष्टि से उषस्-सूक्त तथा इन्द्र-इन्द्राणी, यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि संवाद-सूक्त तथा मण्डूक-सूक्त उदात्त काव्योचित अभिव्यक्तियों के लिए उल्लेखनीय हैं।

वैदिक कविता ने समग्र विश्व को स्नेह, साहचर्य, सहयोग, ममता एवं विश्वबन्धुत्व की शिक्षा दी है। समान यात्रा, समान वाणी और समान चिंतन का अनुपम आदर्श हमें ऋग्वेद की कविता में दृष्टिगोचर होता है-

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।। (*ऋ. X. 191.2*)

हमारे विचार समान हों, हमारी सहमति समान हो, हमारी मनोवृत्ति समान हो! समत्व का यह महामन्त्र आज के युग में नितान्त सार्थक है।

इसी प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी-सूक्त (अथर्व. XII. 1) राष्ट्रीय अस्मिता का चूडान्त निदर्शन है। वैदिक कवि तो पृथ्वी को ममतामयी माँ के ही

रूप में देखने का अभिलाषी है। **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** का उद्घोष अथर्ववेद का महामन्त्र है।

विषयवस्तु की दृष्टि से वेद का चार भागों में विभाजन किया जाता है – मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। यहाँ मन्त्र का अर्थ मनन योग्य वाक्य है जो ऋग्वेद आदि संहिताओं के रूप में उपलब्ध है। इन मन्त्रों की व्याख्या करने वाले भाग ब्राह्मण हैं। ये ग्रन्थ यज्ञीय कर्मकाण्ड से जुड़े हैं। आरण्यक ग्रन्थों में वानप्रस्थोचित नियम तथा आचारसंहिता का उल्लेख है। उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है पारलौकिक गूढ़ रहस्यों का व्याख्यान। इस तरह वेद असीम हैं। उन्हें सही ढंग से समझने, उनके उच्चारण तथा उचित क्रियाकलाप में प्रयुक्त करने के लिए छह वेदाङ्गों का विकास किया गया। ये हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। ये सभी अपने-आप में स्वतन्त्र शास्त्रों के रूप में विकसित हुए हैं।

कर्मकाण्ड एवं वानप्रस्थोचित नियमों से सम्बद्ध होने के कारण ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में कविता का प्रस्फुटन न के बराबर है। किन्तु उपनिषद् वाङ्मय में काव्यधारा का एक प्रौढ़ एवं अलंकृत रूप दृष्टिगोचर होता है। उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपकादि अलंकारों से ओत-प्रोत यह कविता गूढ़तम विषयों को सरलतम शब्दों में प्रतिपादित करती है। जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना नाम एवं रूप छोड़कर समुद्र-रूप हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार साधक भी परब्रह्म में विलीन हो जाता है–

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(*मु.उ. III 2.8*)

वैदिक कविता, निस्सन्देह आर्ष-प्रज्ञा का लीलाविलास है। यह कविता कविता के लिए नहीं लिखी गई है। इसमें तो वैदिक ऋषि गूढ़ विषयों का चिन्तन करते करते अत्यन्त सहृदय हो उठता है। प्रकृति-सौन्दर्य के नयनाभिराम दृश्य तथा लोकजीवन के मर्मस्पर्शी यथार्थ स्वतः ही वर्णनों में गुम्फित हो जाते हैं। किन्तु कालान्तर में वेद की यही नैसर्गिक कविता एक परिनिष्ठित ढाँचे में ढल गई जिसका निदर्शन हमें रामायण, महाभारत और पुराणों में मिलता है।

रामायण की रचना का एकमात्र उद्देश्य आदर्श महामानव के चरित्र की स्थापना था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में भक्तवत्सल, शरणागतरक्षक, दुष्टविनाशक जैसे उदात्त गुण चरितार्थ होते हैं। उस महान् चरित्र का ही यह प्रभाव था कि रामकथा देश, काल एवं व्यक्ति की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई प्राचीन चम्पा, कम्बोज (कम्बोडिया), कटाह द्वीप (मलेशिया) तथा सुवर्णद्वीप (जावा, सुमात्रा, बाली) में भी प्रसिद्ध हो गई।

रामायण में यद्यपि संस्कृत कविता का भावपक्ष अधिक प्रबल है, तथापि उसमें लोकजीवन के विविध पक्ष भी उपेक्षित नहीं हैं। परवर्ती संस्कृत कवियों ने रामायण को आदिकाव्य तथा वाल्मीकि को आदिकवि के नाम से अभिहित किया है। रामायण की कविता निस्सन्देह परवर्ती संस्कृत कविता के समृद्धतम रूप की प्रथम आधारशिला है।

महाभारत महर्षि व्यास की कालजयी कृति है। एक लाख श्लोकों का यह ग्रन्थ विविध सूचनाओं का विश्वकोष एवं ज्ञान-विज्ञान का भण्डारग्रन्थ है। मूलतः तो यह ग्रन्थ कौरवों तथा पाण्डवों के महायुद्ध एवं विजय की कथा है, किन्तु इतिहास के इस वर्णन में भी काव्यात्मकता का अद्भुत निर्वाह महर्षि वेदव्यास ने किया है। यह सत्य है कि रामायण और महाभारत भाषा, भाव, शैली तथा कथानक की दृष्टि से समग्र संस्कृत साहित्य के उपजीव्य ग्रन्थ बन गए हैं।

पुराणों का रचयिता भी महर्षि व्यास को ही माना जाता है। ये पुराण संख्या में 18 हैं- मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, वामन, वराह, विष्णु, वायु, अग्नि, गरुड़, स्कन्द आदि इनमें प्रमुख माने जाते हैं। इन पुराणों का प्रतिपाद्य विषय तो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर आदि का विस्तृत विवेचन है, किन्तु कविता का अजस्र प्रवाह भी इनमें दृष्टिगोचर होता है। भागवतपुराण का वेणुगीत, गोपीगीत तथा भ्रमरगीत समूची संस्कृत कविता का शृंगार है। पुराण की कविता किसी भी दृष्टि से भास एवं कालिदास की रसमयी कविता से कम नहीं है। कृष्ण के विरह में व्याकुल उनकी राजरानियों का कुररी पक्षी को दिया गया निम्न उपालम्भ अन्योक्तिपरम्परा का अनुपम उदाहरण है-

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोध:।
वयमिव सखि किंचिद् गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन।। (*भागवत10.90.15*)

पुराणों में भारतदेश की गौरव-गाथा का अनुपम निदर्शन है। भारत भूमि को सारे विश्व में श्रेष्ठ कहा गया है, इसे स्वर्ग से भी अधिक स्पृहणीय बताया गया है। कुछ उदाहरण देखें-

धन्या: खलु ते मनुष्या:
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीना:। (*भागवत2/3/26*)

सर्वेन्द्रिय सम्पन्न होकर भी जो भारत देश में (जन्म पाते) हैं, वे (ही) मनुष्य भाग्यशाली हैं।

यतो हि कर्मभूरेषा जम्बूद्वीपे महामुने।
अत्रापि भारतं श्रेष्ठमतोऽन्या भोगभूमय:।।

(*शिवमहापुराण5/18/17*)

हे महामुने! इस (सर्वश्रेष्ठ) जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि यह कर्मभूमि है। इसके अतिरिक्त सभी (देश) भोग-भूमियाँ हैं।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
गायन्ति देवा: किल गीतकानि
भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।।

(*शिवमहापुराण5/18/19*)

यह सच है कि देवता (इस आशय के) गीत गाया करते हैं कि वे भाग्यशाली हैं जो स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बने हुए भारतदेश में, अपने देवत्व की समाप्ति पर पुन: मनुष्य बनकर जन्म लेते हैं।

जनुर्हि येषां खलु भारतेऽस्ति
ते स्वर्गमोक्षोभयलाभवन्त:।।

(*शिवमहापुराण5/18/21*)

जिनका भारतदेश में जन्म हुआ है वे स्वर्ग और मोक्ष, दोंनों ही का लाभ प्राप्त करने वाले हो (सक) ते हैं।

वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत एवं पुराण की ऊँची-नीची उपत्यकाओं में बहती सरस संस्कृत काव्यधारा अब भागीरथी की तरह समतलभूमि में प्रवेश कर अपने तटों पर पाणिनि, पतंजलि, कालिदास, भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष जैसे पावन तीर्थों का निर्माण करने में लग जाती है। महर्षि पाणिनि (ई. पू. 5वीं शती) ने चिरकाल से प्रयोग में आ रही भाषा को परिमार्जित कर उसे एक स्थिर रूप प्रदान किया जिसे संस्कृत कहा जाने लगा। लोक के लिए अधिक उपयोगी, सरल एवं बोधगम्य होने के कारण ही इस भाषा को कालान्तर में लौकिक संस्कृत कहा जाने लगा।

महर्षि पाणिनि-प्रणीत *'जाम्बवतीविजय'* सम्भवत: लौकिक संस्कृत भाषा का प्रथम महाकाव्य है जो अब उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् वररुचि-प्रणीत महाकाव्य *'स्वर्गारोहण'* का उल्लेख भी मिलता है। वररुचि का काल ई.पू. चतुर्थ शती माना जाता है। पतंजलि (ई.पू. 150 वर्ष) के महाभाष्य से भी संस्कृत कविता के विकास के बहुमूल्य साक्ष्य मिलते हैं। वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी नामक आख्यायिकाओं का उल्लेख हमें महाभाष्य में ही मिलता है।

महाभाष्यकार पतंजलि के अनन्तर संस्कृत कविता का श्रेष्ठ स्वरूप महाकवि कालिदास की कृतियों में देखने को मिलता है। वेदों से प्रारम्भ काव्यधारा पुराणों के कलेवर तक जहाँ मुक्त वातावरण में प्रवाहित हुई वहीं उसके अनन्तर उसका विकास काव्य-लक्षणों की सीमाओं के बीच हुआ। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में आविर्भूत आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्रीय लक्षणों का प्रथम मानक ग्रन्थ है जिसमें रस, गुण, अलंकार, छन्द एवं रंगमंच का सूक्ष्म विवेचन मिलता है। शैली के आधार पर कविता का गद्य, पद्य तथा चम्पू के रूप में त्रिधा विभाजन भी काव्यशास्त्र में मिलता है। अवान्तर काल में भामह, दण्डी तथा रुद्रट आदि आचार्यों ने जैसे-जैसे काव्यशास्त्रीय तथ्यों को परिमार्जित किया वैसे-वैसे काव्यकृतियों के स्वरूप भी परिवर्तित होते गए।

ई.पू. प्रथम शती के उज्जयिनी–नरेश विक्रमादित्य के राजकवि महाकवि कालिदास ने दो महाकाव्य – *रघुवंश* एवं *कुमारसम्भव*, दो खण्डकाव्य – *मेघदूत* एवं *ऋतुसंहार* तथा तीन नाटक –*अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयतथामालविकाग्निमित्र* की रचना की। कालिदास के युग में हुए कवियों में अश्वघोष, शूद्रक, मातृचेट, आर्यशूर, कुमारदास तथा प्रवरसेन आदि की गणना होती है। इसे संस्कृत कविता का उत्कर्ष काल माना जाता है। इस युग की कविता में भाव तथा भाषा का सुंदर समन्वय मिलता है तथा इसमें व्यंजनावृत्ति की प्रधानता है। साथ ही, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति जैसे कोमल एवं सहज अर्थालंकारों द्वारा कविताकामिनी का सर्वत्र अलंकरण मिलता है। कालिदास की कविता इस विधा का सर्वोत्तम निदर्शन है। निम्नलिखित पद्य में भाव–सौन्दर्य एवं उपमा का मंजुल समन्वय द्रष्टव्य है।

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

(*रघुवंश6.67*)

महाकवि भारवि (छठी शती ई.) के साथ कालिदासोत्तर संस्कृत कविता का उदय हुआ। इस युग के प्रमुख कवि हैं – भारवि, माघ, भट्टि, रत्नाकर, श्रीहर्ष आदि। इस युग की कविता में कलापक्ष की प्रधानता दिखाई देती है।

प्रायः 17वीं शती ई. में पंडितराज जगन्नाथ के साथ संस्कृत कविता के कलात्मक उत्कर्ष का अध्याय पूर्ण समझ लिया जाता है। परन्तु 19वीं शती के राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ उसमें भी नए जीवन और नई चेतना का संचार आरम्भ हो गया। इस युग के संस्कृत कवियों ने प्राचीन परम्पराओं का परित्याग न करते हुए भी राष्ट्र के नूतन परिवेश में काव्य–साधना की। पं. अम्बिकादत्त व्यास, म.म. रामावतार शर्मा, अप्पा शास्त्री राशिवडेकर, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री आदि का नाम इस युग के कवियों में उल्लेखनीय है। यह आधुनिक संस्कृत कविता का उदयकाल था।

एक ओर जहाँ संस्कृत कविता मानवीय संवेदना से जुड़कर विकसित हो रही थी वहीं दूसरी ओर विज्ञान एवं शास्त्र-चिन्तन से जुड़ी दूसरी काव्यधारा भी समानान्तर स्तर पर प्रवाहित हो रही थी। आयुर्वेद, रसायन, ज्योतिष जैसे वैज्ञानिक विषयों के साथ-साथ काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, गणित, तन्त्र, संगीत, काम आदि शास्त्रों का पल्लवन भी अबाध गति से होता रहा था। ये सभी शास्त्रीय ग्रन्थ प्रायः पद्यबद्ध हैं। इनमें आयुर्वेद के चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहिता, रसायनविज्ञान के रसरत्नाकर (नागार्जुन), रसहृदयतन्त्र (भगवत्पाद), रसरत्नसमुच्चय (वाग्भट) रसेन्द्रचूडामणि (सोमदेव) ज्योतिषशास्त्र के आर्यभटीय (आर्यभट्ट) पंचसिद्धान्तिका, बृहज्जातक, बृहत्संहिता (वराहमिहिर-505 ई.) तथा भास्कराचार्य, नीलकण्ठ, कमलाकर आदि विद्वानों के ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में काव्यालंकार (भामह-सातवीं शती ई.) काव्यादर्श (दण्डी सातवीं शती ई.), काव्यालंकार (रुद्रट-आठवीं शती ई.), वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक-ग्यारहवीं शती ई.), काव्यप्रकाश (मम्मट-ग्यारहवीं शती ई.), साहित्यदर्पण (विश्वनाथ-चौदहवीं शती ई.) तथा रसगङ्गाधर (पण्डितराज जगन्नाथ-सत्रहवीं शती ई.) उल्लेखनीय हैं। आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र, धनञ्जय का दशरूपक, रामचन्द्र-गुणचन्द्र का नाट्यदर्पण आदि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। आचार्य पिङ्गल का छन्दःशास्त्र, क्षेमेन्द्र का सुवृत्ततिलक, नकुल का अश्वशास्त्र, वात्स्यायन का कामशास्त्र, कौटिल्य तथा मनु, याज्ञवल्क्य आदि के स्मृतिग्रन्थ भी अपनी-अपनी विधाओं के मूल स्रोत हैं। वस्तुतः विज्ञान एवं शास्त्र पर आधारित संस्कृत वाङ्मय का भण्डार बहुत विशाल एवं विविध है। यहाँ केवल परिचयात्मक ज्ञान के लिए ही किंचित् सामग्री दी गई है।

संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा

संस्कृत गद्य की परम्परा वैदिक काल से मानी जा सकती है। तैत्तिरीय संहिता में गद्य का प्रयोग बहुत मात्रा में मिलता है। वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में संस्कृत गद्य का प्रभूत विकसित रूप पाया जाता है। शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण के कुछ गद्यमय आख्यान

तो उत्तरकालीन कवियों के लिए उपजीव्य बन गए हैं। वैदिक साहित्य के बाद सूत्र-साहित्य में, विशेषकर धर्मसूत्रों में, संस्कृत-गद्य का विकसित रूप मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर रचित पतंजलि का महाभाष्य गद्य में लिखा गया है। महाभारत में भी कहीं-कहीं संस्कृत-गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। दूसरी शती ई. में तो गद्य के विकास के प्रौढ़ रूप मिल जाते हैं। इनमें रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख अलंकृत गद्यकाव्यशैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस काल तक गद्य काव्यधारा निश्चित रूप में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना चुकी थी। उसके बाद आर्यशूर की जातकमाला में मनोहारी गद्य का स्वरूप मिल जाता है। हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति में भी संस्कृत गद्य का सुन्दर एवं प्रौढ़ रूप दिखाई देता है। इस तरह पाँचवीं शती तक आते-आते संस्कृत गद्य अपनी सभी विधाओं में प्रतिष्ठित हो चुका था। गुणाढ्य की बृहत्कथा से प्रभावित होकर *वेताल-पंचविंशतिका* जैसी कथायें लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रतिष्ठा पा चुकी थीं। *दिव्यावदान,अवदानशतक* आदि जैसी सरस कथायें संस्कृत-गद्य को खूब पल्लवित करने लगीं। संस्कृत नाटकों में भी संवाद के रूप में गद्यकाव्य अपने वैभव को प्राप्त कर चुका था। छठी शती तक आते-आते गुण, अलंकार और रस की दृष्टि से गद्यकाव्य पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। उसी काल में बाण की वाणी ने अपनी रचनाओं *हर्षचरित* और *कादम्बरी* के माध्यम से गद्यकाव्य को उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। बाण के गद्य में वर्ण-विन्यास, शब्द-प्रयोग, अर्थ-संकल्पना, भाव-सामंजस्य एवं रसमाधुर्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। उसके बाद के गद्यकारों में सुबन्धु, दण्डी, धनपाल, सोड्ढल, वामनभट्ट, अम्बिकादत्त व्यास आदि का नाम उल्लेखनीय है।

संस्कृत गद्यकाव्य की रूप, आधार, विषय आदि की दृष्टि से कई विधायें हैं जो इस प्रकार हैं- कथा, आख्यायिका, आख्यान, चम्पू, प्रशस्ति, अभिलेख, पत्र एवं निबन्ध। इनमें कथा प्राचीनतम विधा है जो कल्पनाप्रसूत कहानी पर आधारित होती है जैसे- बाण की *कादम्बरी।* ऐतिहासिक विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखे गए गद्यकाव्य को आख्यायिका कहते हैं, यथा- बाण का *हर्षचरित* । आख्यान का आकार

प्राय: छोटा होता है जिसमें ऐतिहासिक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार के विषय होते हैं। संस्कृत के आख्यान-साहित्य में *पंचतन्त्र,हितोपदेश, शुकसप्तति* आदि प्रसिद्ध हैं।

गद्य-पद्य मिश्रित काव्य को चम्पू कहा गया है। संस्कृत-साहित्य में त्रिविक्रमभट्ट का नलचम्पू, भोज का चम्पूरामायण, सोमदेवसूरि का यशस्तिलकचम्पू आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत के कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में प्राय: गद्यकाव्यों की रचना की है जिन्हें प्रशस्तिकाव्य के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में शिलाओं, ताम्रपत्रों तथा स्तूपों पर प्राय: शासनादेश लिखे जाते थे। इनका गद्य सामान्य गद्य से भिन्न होता था। अत: अभिलेख गद्य को एक पृथक् भेद मान लिया गया। पत्र-लेखन भी प्राचीन काल से ही होता रहा है। संस्कृत गद्य-साहित्य की अपेक्षाकृत नवीन विधा निबन्ध-लेखन है। संस्कृत गद्यमय निबन्धों में हृषीकेश शास्त्री की *प्रबन्धमंजरी*, रामावतार शर्मा का *प्रकीर्णनिबन्ध* आदि उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत के प्रमुख गद्यकारों में आर्यशूर का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। उनका स्थितिकाल 300 ई. के आसपास माना जाता है। उनकी रचना-*जातकमाला* में दीर्घ एवं लघु दोनों प्रकार के समासों का आदर्श समन्वय प्राप्त होता है। छठी शती में हुए दण्डी का दशकुमारचरित संस्कृत गद्य का उत्कृष्ट निदर्शन है। इसकी भाषा नैसर्गिक, प्रवाहपूर्ण एवं मुहावरेदार है। दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध है। सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में सुबन्धु ने गौडी रीति में वासवदत्ता नामक गद्यग्रन्थ की रचना की जिसमें कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता की प्रणयकथा वर्णित है। सुबन्धु ने अपनी रचना में लम्बे-लम्बे समासों, अनुप्रास तथा श्लेष अलंकार का विशेष रूप से प्रयोग किया है।

संस्कृत गद्य साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध गद्यकार बाण ही हैं। उनकी *हर्षचरित* एवं *कादम्बरी* नाम की दो रचनायें गद्यकाव्य का अलंकार मानी गई हैं। रस, अलंकार, गुण, रीति आदि के समुचित प्रयोग के कारण *कादम्बरी* संस्कृत की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। त्रिविक्रमभट्ट की *नलचम्पू* सरस एवं प्रसादपूर्ण रचना है। इसमें सभङ्ग

श्लेष एवं अभङ्ग श्लेष की प्रधानता है। धनपाल की *तिलकमंजरी,* बाण की शैली में लिखी गई है। इसकी भाषा पर्याप्त प्रांजल एवं शैली दुरूहता से रहित है। 11वीं शती के सोड्ढल की *उदयसुन्दरीकथा* गद्यबाहुल्य के कारण गद्यकाव्य में ही गिनी जाती है। इसमें पदसौष्ठव तथा आरोह स्पष्ट प्रतीत होते हैं। 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए अम्बिकादत्त व्यास के गद्यकाव्य *शिवराजविजय* में छत्रपति शिवाजी का जीवन-वृत्त चित्रित है। इसमें यत्र-तत्र बाण की शैली का अनुकरण है। सम्पूर्ण गद्यकाव्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है।

संस्कृत भाषा में गद्य-रचना कम हुई है फिर भी विभिन्न कालों में कवियों ने गद्यकाव्य की रचना में अपना कौशल प्रदर्शित किया है। आधुनिक काल के गद्यकारों में पण्डिता क्षमाराव (1890-1954) का नाम अग्रणी है। उन्होंने *कथामुक्तावली,विचित्रपरिषद्यात्रा*इत्यादि कई गद्य-काव्य लिखे हैं। इनके अतिरिक्त मथुरानाथ शास्त्री, हृषीकेश भट्टाचार्य, नवलकिशोर काङ्कर आदि के नाम भी आधुनिक गद्य साहित्य में उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत नाट्यसाहित्य की परम्परा

नाटक संस्कृत काव्य का सुन्दरतम रूप माना गया है- **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'**। दर्शकों द्वारा देखे जाने के कारण इसे दृश्यकाव्य भी कहा जाता है। नाट्य की महिमा बतलाते हुए भरतमुनि ने लिखा है कि 'संसार का ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, कला, योग और कर्म नहीं है, जो इसमें न आता हो।' महाकवि कालिदास ने भी कहा है कि 'नाटक भिन्न-भिन्न रुचि के लोगों के लिए मनोरंजन का एक सामान्य साधन है'। इसीलिए नाटक को संस्कृत काव्य की चरमपरिणति माना जाता है- **'नाटकान्तं कवित्वम्'**। सभी प्रकार के काव्यरूपों में नाटक अपेक्षाकृत अधिक जनप्रिय होते हैं, क्योंकि इनमें मनोरंजन, रस-भावाभिव्यक्ति और विषय की विविधता अधिक पाई जाती है।

नाटक की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। भारतीय परम्परा नाटक को पञ्चम वेद मानती है। महामुनि भरत के

अनुसार ब्रह्मा ने चारों वेदों का ध्यान करके ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लेकर *'नाट्यवेद'* नामक पञ्चम वेद की रचना की। कई विद्वानों ने ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों में संस्कृत नाटकों का प्रारम्भिक रूप देखा है। इन सूक्तों में *इन्द्र-मरुत्, अगस्त्य-लोपामुद्रा, विश्वामित्र-नदी, वसिष्ठ-सुदास, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी,पुरूरवा-उर्वशी,सरमा-पणि* आदि के संवाद बहुत प्रसिद्ध हैं। ये संवादात्मक सूक्त नाटकीय माने गए हैं। पाश्चात्त्य विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुत्तलिका-नृत्य, स्वाँग, छायानाटक, वीरपूजा आदि के सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं।

नाटक के विकास के लिए अपेक्षित तत्त्व गीत, वाद्य, अभिनय, संवाद आदि की सत्ता वैदिक काल में भी थी। रामायण और महाभारत में नट, नर्तक, नाटक आदि के प्रयोग से सिद्ध होता है कि उस युग में भी नाटकों का प्रचलन था। ईसा पूर्व दूसरी शती में पतंजलि ने अपने महाभाष्य मे कंसवध और बलिबन्ध नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। ईसा पूर्व पाँचवीं शती में पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में नटसूत्रों का उल्लेख किया है। अशोक के शिलालेखों में भी नट और समाज का उल्लेख मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि भारत में नाट्य-परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से है।

संस्कृत नाट्यसाहित्य में सबसे प्राचीन रचनायें महाकवि भास की मिलती हैं। इनका समय चौथी-पाँचवीं शती ई.पू. के लगभग माना जाता है। इन्होंने तेरह नाटकों की रचना की जिनमें *स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण,प्रतिमानाटक,पंचरात्र,दूतवाक्य,कर्णभार* आदि प्रसिद्ध हैं। इनके बाद शूद्रक का *मृच्छकटिक* उल्लेखनीय है।

महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत नाट्यसाहित्य में सर्वोपरि है। इन्हें कविकुलगुरु भी माना जाता है। इनका *अभिज्ञानशाकुन्तल* अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं में अनूदित हो चुका है। इसमें आदर्श भारतीय जीवन का वर्णन है। *मालविकाग्निमित्र* और *विक्रमोर्वशीय* कालिदास के दो अन्य प्रसिद्ध नाटक हैं। कालिदास की शैली सरल, सरस, मधुर, प्रसाद तथा लालित्य गुणों से सम्पन्न है।

कालिदास के बाद अश्वघोष, विशाखदत्त, दिङ्नाग, भट्टनारायण, भवभूति, हर्ष आदि का नाम संस्कृत नाट्य साहित्य में उल्लेखनीय है। इनमें भवभूति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने तीन नाटकों की रचना की है- *मालतीमाधव*, *महावीरचरित* और *उत्तररामचरित*। इनमें उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ है। यह वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित है। इसमें करुण रस की अत्यन्त सुन्दर एवं मार्मिक निष्पत्ति देखने योग्य है। भवभूति में यद्यपि कालिदास की सी सरलता और सहजता नहीं है फिर भी नाट्य साहित्य में उन्हें कालिदास के समान ही सम्मान मिलता है। आदर्श वैवाहिक जीवन के चित्रण में भवभूति पारंगत हैं। राम और सीता के कोमल एवं पवित्र प्रेम का चित्रण भी उत्तररामचरित की विशिष्टता है।

संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषता उनका सुखान्त होना है। सम्पूर्ण नाटक में यद्यपि सुख और दु:ख का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, तो भी उसकी परिणति सुखान्त ही होती है। सुख के उपपादन के लिए ही नाटक में दु:ख का निष्पादन होता है। इसके पीछे भारतीय चिन्तन ही प्रधान कारण है। प्राचीन भारत के निवासी आशावादी थे। उनके अनुसार जीवन में दु:ख-क्लेश की परिणति सदैव सुख और परमानन्द में होती है।

संस्कृत नाटकों में संवाद के लिए प्राय: गद्य का ही प्रयोग होता है परन्तु रोचकता, प्रकृतिवर्णन, नीतिशिक्षा आदि के लिए पद्य के प्रयोग को महत्त्व दिया जाता है। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी संस्कृत नाटकों में मिलता है। सभी प्रकार के पात्र संस्कृत समझते तो हैं, किन्तु अपने-अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप संस्कृत या प्राकृत बोलते हैं। नायक के मित्र के रूप में विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इन नाटकों में अभिनय सम्बन्धी संकेत, यथा - प्रकाशम्, स्वगतम्, जनान्तिकम्, सरोषम्, विहस्य इत्यादि सूक्ष्मता के साथ दिए जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ नैतिकता और उच्च आदर्शों का जनमानस में संचार करना भी संस्कृत-नाटकों का एक लक्ष्य है। लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के पात्र इनमें होते हैं। प्रकृति-वर्णन भी संस्कृत-नाटकों की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

प्रस्तुत संकलन की पृष्ठभूमि

संस्कृत के अखिल भारतीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर वैकल्पिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रस्तुत संकलन का संपादन किया गया है। इससे पूर्व एकादश, द्वादश वर्ग की कक्षाओं के लिए गद्य, पद्य एवं नाटक की स्वतन्त्र पुस्तकों का प्रावधान था। विगत वर्षों में परिषद् द्वारा प्रकाशित विद्यालयीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तथा पाठ्यपुस्तकों की एक बार पुनः आमूल-चूल समीक्षा की गई। इस सन्दर्भ में थोड़ा विस्तार से बताने की आवश्यकता है।

विद्यालयीय शिक्षा के लिए दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्' (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा आयोजित संगोष्ठी में गहन विचार-विमर्श किया गया। उपस्थित अधिकारियों एवं विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा समवेत रूप से **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005** के मानक लक्ष्यों का निर्धारण किया गया। इन लक्ष्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है-भारमुक्त शिक्षा। विद्वानों का अनुभव है कि पाठ्यग्रन्थों के दुरूह भार से बोझिल छात्र, एक बिन्दु पर पहुँच कर पाठ्यक्रम को 'भार' मानने एवं अनुभव करने लगता है। पाठ्यक्रमों की विविधता, बहुलता तथा मात्राधिक्य - तीनों मिलकर छात्र की अध्ययन-अभिरुचि को प्रायः समाप्त ही कर देते हैं। अतः आवश्यक है कि छात्रों की अध्ययन-अभिरुचि को नित्य नवीन बनाने के लिए शिक्षा (के पाठ्यक्रम) को भारमुक्त किया जाये।

जब शिक्षा भारमुक्त होगी तो वह स्वयमेव एक 'आनन्दप्रद अनुभूति' सिद्ध होगी। यह पाठ्यचर्या-2005 का दूसरा लक्ष्य है। आनन्द तभी प्राप्त होता है जब किसी कार्य में उद्वेग न हो, अरुचि न हो, थकान न हो। शिक्षा के भारमुक्त होने पर ये गुण स्वतः उद्भूत होंगे और तब छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रमों में आकृष्ट एवं अनुरक्त होगा। इस आनन्दवृद्धि के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे ज्ञान-सन्दर्भों का समावेश किया जाना चाहिए जिनमें उदात्त जीवन मूल्य हों, जिनमें घटना-वैचित्र्य के साथ ही साथ आधुनिक जनजीवन का प्रतिबिम्ब भी हो।

वस्तुत: शिक्षा एवं पाठ्यक्रम का यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। देववाणी संस्कृत का वाङ्मय वेदों से प्रारम्भ होकर आधुनिक युग तक व्याप्त है। वस्तुत: यह वाङ्मय भारतवर्ष के पिछले पाँच हजार वर्षों का एक जीवन्त दस्तावेज है जिसमें राष्ट्र का इतिहास, भूगोल, दर्शन, संस्कृति, सामाजिक उथल-पुथल, नित्य परिवर्तनशील जनजीवन सब कुछ विद्यमान है।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि प्राचीन ग्रन्थों से हम ऐसे ही अंश पाठ्यक्रम में समाविष्ट करें जिनमें आज का भी राष्ट्रीय एवं सामाजिक परिवेश समरस हो। श्रवण कुमार की मातृपितृभक्ति, हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा, वाल्मीकि-वर्णित ऋतुओं का शाश्वत सौन्दर्य तथा कथासरित्सागर, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश एवं पुरुषपरीक्षा आदि प्राचीन ग्रन्थों की शिक्षाप्रद कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। इनका सन्दर्भ सार्वकालिक है, अत: इनकी सम्प्रेषणीयता भी जैसी की तैसी है।

पाठ्यचर्या का तीसरा लक्ष्य भी यही निश्चित किया गया – जीवन के परिवेश से शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकेगी जब संकलित पाठांशों एवं आधुनिक जीवन-परिवेश के बीच सेतु हो, अन्त:सम्बन्ध हो।

पाठ्यचर्या का चौथा लक्ष्य निश्चित किया गया – शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारी पाठ्यपुस्तकें सर्वथा निरवद्य हों, विवादमुक्त हों। संकलित पाठ राष्ट्रीय आदर्शों तथा संवैधानिक मान्यताओं के सर्वथा अनुकूल हों। पुरानी पाठ्यपुस्तकों में प्राय: 'मूलपाठ की रक्षा' के लोभवश उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा की गई है। परन्तु आज का भारतीय समाज अत्यन्त संवेदनशील है। अत: यह ध्यान रखा ही जाना चाहिए कि किसी भी संकलित अंश से समाज के किसी भी वर्ग की भावना आहत न हो। पाठों से सर्वधर्म-समभाव, सर्वोदय तथा सामाजिक समानता आदि का समर्थन होना चाहिए। किसी भी वर्ग, जाति, समुदाय अथवा प्रवृत्ति की अवमानना नहीं होनी चाहिए और न ही किसी के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से कोई आक्षेप होना चाहिए।

पाठ्यचर्या का अन्तिम लक्ष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर संस्कृत पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में! यह लक्ष्य है – छात्रों को चिन्तन के लिए प्रेरित करना। पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए जो छात्रों को स्वयं स्फूर्त बना सके। प्राय: शिक्षक छात्रों को 'निरुपाय' बनाता है यह कहकर कि 'कण्ठस्थ करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।'

शब्दरूप एवं धातुरूप कण्ठस्थ करते-करते अधिकांश छात्र निराश, कुण्ठित एवं हतप्रभ होकर संस्कृताध्ययन से विरत हो जाते हैं। छात्रों में एक भ्रम-सा व्याप्त हो जाता है कि संस्कृत में सब कुछ रटने से ही सिद्ध होगा। जबकि ऐसा बिल्कुल नहीं है। कौन ऐसी भाषा है जिसमें छात्र महत्त्वपूर्ण अंशों को कण्ठस्थ नहीं करता? विद्या का कण्ठस्थ होना तो प्रशंसनीय बात है, इसकी निन्दा कैसी?

परन्तु संस्कृत भाषा में प्रवीण होने के लिए सब कुछ रट डालने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है तो केवल इस बात की कि छात्र सर्वत्र 'अध्यापकाश्रित' ही न हो। वह स्वयं भी कुछ सोचना विचारना अथवा करना सीखे। किसी पाठ को पढ़कर वह इतना समर्थ हो जाय कि पाठाश्रित लघु प्रश्नों का उत्तर दे सके, किसी अंश का आशय बता सके, रिक्त स्थानों की पाठ्यांश के आधार पर पूर्ति कर सके, प्रकृति-प्रत्यय का समुचित मेलन कर सके तथा योग्यता-विस्तार के अन्यान्य मानकों को भी आत्मसात् कर सके।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृताध्यायी छात्र का संस्कृत के साथ नीर-क्षीर सम्बन्ध होना चाहिए न कि तिल-तण्डुलवत् संसृष्टि! यदि छात्र 'संस्कृतमय' नहीं हुआ, उसकी संस्कृत समझने, लिखने, बोलने की क्षमता विकसित नहीं हो पाई तो फिर संस्कृत पढ़ने का लाभ क्या हुआ? यह सब संभव है पाठ्यचर्या के उपर्युक्त लक्ष्यों को अपनाने से।

उपर्युक्त लक्ष्यों को चरितार्थ एवं अनुप्रयुक्त करने की दृष्टि से ही 'नवीन पाठ्यक्रम' की संकल्पना की गई तथा नये मानदण्डों के आधार पर छठी, नवीं, तथा ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों के लिए नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया है। इन पुस्तकों का प्रमुख वैशिष्ट्य है–

क – प्राचीन ग्रन्थांशों के साथ ही साथ आधुनिक संस्कृत रचनाओं का भी समावेश।

ख – अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की विविध अनूदित (संस्कृत) रचनाओं का भी पाठ्यक्रम में समावेश।

ग – पाठ्यचर्या के विविध लक्ष्यों की पूर्ति हेतु नये अभ्यास प्रश्नों, टिप्पणियों एवं योग्यता विस्तार-उपायों का समावेश।

घ – शिक्षण-संकेतों का निर्देश।

पाठ्यचर्या के लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर सुधी प्राध्यापकों एवं विषय-विशेषज्ञों के समवेत प्रयास से निर्मित प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक निश्चय ही संस्कृताध्ययन के क्षेत्र में एक शुभारम्भ है। यह पाठ्यक्रम संस्कृताधीती छात्रों में उन गुणों को विकसित करेगा जो पाठ्यचर्या के लक्ष्यरूप में विन्यस्त किये गये हैं।

पाठ्यपुस्तक-समिति के *मुख्यपरामर्शक*के रूप में हमें मार्गदर्शन मिला है संस्कृत के प्रख्यात विद्वान् प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) का जो श्रेष्ठ कवि, समीक्षक, अनेक पाठ्यग्रन्थ-निर्माता एवं अनुभव के ध नी कर्मठ विद्वान् हैं। *विशेषज्ञविद्वान्*के रूप में हम लाभान्वित हुए हैं प्रो. राजेन्द्र मिश्र एवं प्रो. दीप्ति त्रिपाठी से जो पूर्व में भी राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् की संस्कृत सम्बन्धी अनेक परियोजनाओं, संगोष्ठियों एवं उपक्रमों में अपना सक्रिय योगदान देते रहे हैं। समिति के अन्यान्य समस्त सदस्य भी विषय एवं भाषा के मर्मज्ञ, यशस्वी प्राध्यापक हैं।

प्रस्तुत संकलन में दस पाठ हैं। इनमें प्रथम पाठ **वेदामृतम्** में ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद से मन्त्रों को संकलित किया गया है। विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रप्रेम की दृष्टि से ये मन्त्र छात्रों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

द्वितीय पाठ **ऋतुचित्रणम्** में वाल्मीकिरामायण के किष्किन्धा, अरण्य एवं सुन्दर काण्डों से 12 श्लोक संकलित हैं। इनमें वसन्त, वर्षा,

शरद् एवं हेमन्त तथा चन्द्रोदय का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से ये श्लोक अत्यन्त मनोरम तथा हृदयावर्जक हैं। सम्पूर्ण विश्व में मात्र भारतवर्ष ही एक ऐसा दिव्य भूखण्ड है जहाँ समस्त ऋतुएँ अपने सांगोपांग वैभव-विलास के साथ बारी-बारी से आती हैं। प्रत्येक ऋतु में धरित्री का सारा परिवेश ही आमूल-चूल परिवर्तित हो उठता है।

तृतीय पाठ **परोपकाराय सतां विभूतयः** आर्यशूर प्रणीत **जातकमाला** से गृहीत है। इसमें मत्स्यरूप में अवतरित भगवान् बोधिसत्त्व (तथागत के पूर्वजन्मों की संज्ञा) के परोपकार की घटना का अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है।

चतुर्थ पाठ **मानो हि महतां धनम्** पंचम वेद कहे जाने वाले महाभारत से संकलित किया गया है। क्षात्रधर्मरता विदुरा सिन्धुराज द्वारा पराजित तथा रणभूमि से पलायित अपने पुत्र को गर्हित करती हुई उसे विजय प्राप्ति हेतु प्रेरित करती है। यह पाठ हमें पुरुषार्थ एवं उद्योग की शिक्षा देता है।

पञ्चम पाठ **सौवर्णशकटिका** महाकवि शूद्रक-प्रणीत अमर नाट्यकृति **मृच्छकटिकम्** से संकलित है। सोने और माटी के शाश्वत द्वन्द्व की मर्मस्पर्शी व्याख्या करने वाले इस नाट्यांश में नाट्यनायक चारुदत्त के पुत्र रोहसेन की बालसुलभ लालसा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है।

षष्ठ पाठ **आहारविचारः**, चरक-संहिता के रसविमान नामक प्रथम अध्याय से लिया गया है। इसमें आहार-सामग्री के गुणों की वैज्ञानिक समीक्षा की गई है जो आज के रोगबहुल परिवेश में अत्यन्त उपादेय है।

सप्तम पाठ **सन्ततिप्रबोधनम्** महर्षि अरविन्द-प्रणीत संस्कृत खण्डकाव्य **भवानी-भारती** से संकलित है जिसमें पराधीन भारत-जननी द्वारा अपनी सन्तानों को स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु प्रेरित एवं प्रबोधित किया गया है।

अष्टम पाठ **दयावीर कथा** मैथिल-कोकिल विद्यापति-प्रणीत कथाकृति **पुरुषपरीक्षा** से संकलित है जिसमें शरणागतवत्सल रणथम्भौर नरेश परम हठी राव हम्मीर सिंह की दयावीरता का विलक्षण शिक्षाप्रद वर्णन किया गया है।

नवम पाठ **विज्ञाननौका** महाकवि प्रो. श्रीनिवास रथ के काव्यसंग्रह **'तदेव गगनं सैव धरा'** से संकलित है। इस कविता में पारम्परिक एवं नैसर्गिक सुख-सम्पदा की उपेक्षा कर विज्ञान-प्रदत्त असुखान्त सुविधाओं के अन्धमोह के प्रति कवि द्वारा जनता को सावधान किया गया है।

दशम पाठ **कन्थामाणिक्यम्** प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र प्रणीत एकांकी-संग्रह **रूपरुद्रीयम्** से संकलित है। कन्थामाणिक्य का अर्थ है **गुदड़ी का लाल**, जिसका इस एकांकी में नाम है-सोमधर। सोमधर एक शाकफलविक्रेता का बच्चा है जिसकी मित्रता अधिवक्ता भवानीदत्त के पुत्र सिन्धु से है। गरीब-अमीर की यह मैत्री पूर्वाग्रह - ग्रस्त भवानीदत्त को पसन्द नहीं। परन्तु दुर्घटनाग्रस्त सिन्धु के प्रति प्रदर्शित सोमधर के सदाचरण ने एक दिन भवानीदत्त का भी हृदय परिवर्तित कर दिया। वर्गद्वेष को समाप्त करने वाला यह एकांकी छात्रों को सत्पथ प्रदर्शित करता है।

एकादश पाठ **ईशः कुत्रास्ति** विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की **गीतांजलि** से संकलित है। संस्कृत में अनूदित रवीन्द्रनाथ की यह बंगला कविता उनके प्रगतिवादी एवं जनवादी दृष्टिकोण का परिचय कराती है जिसमें परमेश्वर को मन्दिर के गर्भगृह में ढूँढने की बजाय खेतों-खलिहानों में प्रत्यक्ष देखने का सन्देश दिया गया है।

अन्तिम द्वादश पाठ **गान्धिनः संस्मरणम्** गाँधीजी की मूल गुजराती आत्मकथा के संस्कृत रूपान्तर **सत्यशोधनम्** से लिया गया है। इसमें राष्ट्रपिता बापू ने, बचपन में देखे गये दो नाटकों 'पितृभक्त श्रवणकुमार एवं सत्य हरिश्चन्द्र' का अपने ऊपर विलक्षण प्रभाव स्वीकार किया है। पौराणिक कथा-पात्रों के इसी चारित्रिक भाव ने वस्तुतः उन्हें महामानव बनाया।

प्रस्तुत संकलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत भाषा के अतिप्राचीन, मध्यवर्ती तथा अतिनवीन - तीनों ही भाषा-रूपों एवं वाङ्मयों को एक साथ रखा गया है। इससे जहाँ छात्रगण संस्कृत के नूतन साहित्य से परिचित होंगे वहीं उनके अभिभावकों तथा अन्यान्य लोगों का यह भ्रम-निवारण भी होगा कि संस्कृत मात्र एक प्राचीन भाषा है जो अब

कालातीत हो चुकी है। रवीन्द्र, अरविन्द, महात्मा गाँधी, श्रीनिवास रथ, अभिराजराजेन्द्र की मौलिक अथवा अनूदित रचनाओं से संस्कृत भाषा की अर्वाचीनता एवं जीवन्तता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

संकलन के सभी पाठों में विभिन्न मानवीय भावों का कुशलता से चित्रण किया गया है। मानवमूल्यों की स्थापना, सहज आन्तरिक आकर्षण, परोपकार, बालमनोविज्ञान, आहार की महत्ता एवं प्रबन्धदक्षता की दृष्टि से ये पाठ छात्रों के लिए शिक्षाप्रद एवं उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त इस संकलन का उद्देश्य छात्रों को संस्कृत के प्रसिद्ध तथा महान् साहित्यकारों से परिचित करवाना भी है। इसके साथ-साथ उनकी सौन्दर्यानुभूति का विकास करवाना भी इस संकलन का लक्ष्य है।

संस्कृत साहित्य की विशाल परम्परा से इस संकलन में वेद, काव्य, गद्य तथा नाटक से प्रतिनिधिभूत अंश संकलित हैं। जिन ग्रन्थों से ये पाठ्यांश संकलित हैं उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है-

ऋग्वेदः- ऋग्वेदसंहिता में स्तुतिपरक तथा अर्चनाप्रधान मन्त्रों का संकलन किया गया है। यह विश्व का प्रथम व्यवस्थित उपलब्ध ग्रन्थ है जिसमें सप्तसिन्धु - प्रदेश में रहने वाले आर्यों के धार्मिक विचारों एवं दार्शनिक भावनाओं का काव्यात्मक चित्रण है। ऋग्वेद के समय में भारतवर्ष की जो सांस्कृतिक चेतना थी वह आज भी भारतीय मानस में विद्यमान है। इससे संस्कृत की धारा के सतत प्रवाह की पुष्टि होती है। आर्यों की एक लम्बी बौद्धिक परम्परा का दिग्दर्शन ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। वेद के सूक्तों के बहुत बड़े भाग में अग्नि, इन्द्र, सविता, रुद्र, मित्र, वरुण, सूर्य, मरुत् आदि देवताओं की प्रार्थना है। धार्मिक दृष्टि से रचित सूक्तों की संख्या इस संहिता में अवश्य ही सर्वाधिक है। यह मंडल, अध्याय तथा सूक्त रूप में विभक्त हैं। इसमें 10580 मन्त्र एवं 1028 सूक्त हैं।

यजुर्वेदः- इसमें यज्ञ में उपयोगी मन्त्रों का संकलन है। इस तरह यह अनुष्ठान-विषयक संहिता है। इन यज्ञों में दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि प्रमुख हैं। यजुर्वेद में कुछ मन्त्र पद्यात्मक हैं तथा कुछ गद्यात्मक हैं। गद्यात्मक मन्त्र राष्ट्रीय

भावना से ओत-प्रोत हैं। कर्मकाण्ड में उपयोगी होने के कारण यजुर्वेद अन्य सभी वेदों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।

सामवेदः- इस संहिता से कोई मन्त्र तो नहीं लिया गया है फिर भी सामान्य परिचय की अपेक्षा से यहाँ उल्लेख कर दिया गया है। सामवेद का महत्त्व संगीत की दृष्टि से बहुत अधिक है। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत का उद्भव किन स्रोतों से हुआ।

अथर्ववेदः- अथर्ववेद के मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि अथर्वा है। यह वेद 20 काण्डों में विभक्त है। इस वेद में मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, ओषधि, राजनीति, राज्य पालन और ईश्वराराधन के बड़े ही उपयोगी मन्त्र संगृहीत हैं। अथर्ववेद को सर्वाधिक मानवोपयोगी वेद माना गया है। जीवन के प्रायः सभी पक्षों का स्पर्श इसमें हुआ है, किन्तु विशेष रूप से तत्कालीन विश्वासों एवं प्रचलित तन्त्र-मन्त्र आदि का प्रकाशन इसमें अधिक है। इसी क्रम में अभिचार से संबद्ध क्रियाओं का निरूपण है। शत्रुनाश, आरोग्य-प्राप्ति, गृह-सुख, भूत-प्रेतों का निवारण, कीट-पतंगों का नाश, इष्ट वस्तु का लाभ, विवाह, वाणिज्य, पितृपूजा आदि का विवेचन अथर्ववेद के मन्त्रों में है। विविध रोगों का स्वरूप बतलाकर उनके निवारण की व्यापक विधि भी इसमें दी गई है।

रामायणः- रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि संस्कृत काव्य के आदिकवि माने जाते हैं और उनकी कृति आदिकाव्य। इसमें मर्यादापुरुषोत्तम राम का पावन चरित वर्णित है। यह काव्यकृति सात कांडों में विभक्त है और इसमें 24,000 श्लोक हैं। कई अर्थों में यह कृति संस्कृत-कविता के नवीन युग का सूत्रपात करती है। महर्षि वाल्मीकि ने एक ओर तो संस्कृत कविता के उच्च मानवीय जीवन-मूल्य प्रस्तुत किए हैं, तो दूसरी ओर कविता के नये कलात्मक रूपों का भी सूत्रपात किया है।

लोक-जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण, उदात्त जीवन-मूल्य, जड़-चेतन का समन्वय तथा विविध सांस्कृतिक धाराओं का सम्मिश्रण रामायण के प्रमुख प्रतिपाद्य बिन्दु हैं। रामायण के नायक मर्यादापुरुषोत्तम की पितृभक्ति, भ्रातृस्नेह, शरणागतप्रेम, मैत्रीभाव आदि दिव्यगुण भारतीय

संस्कृति के निर्माण में अतीव सहायक सिद्ध हुए हैं। इस तरह राम का पावन चरित्र परवर्ती युग में उदात्त जीवनादर्शों का आधार बनता चला गया और इस आदिकाव्य को उत्तरोत्तर जनप्रिय बनाता गया है।

महाभारतः- यह महर्षि वेदव्यासप्रणीत अद्भुत काव्यग्रन्थ है। इसको पुराण भी कहा जाता है। इतिहास का भी इसमें अलौकिक समावेश है। वाल्मीकिरामायण की भाँति इसमें अधिकतर अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके विषय में सूक्ति प्रसिद्ध है *'यदिहास्ति तदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित्'* अर्थात् इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के साहित्यिक तत्त्वों का समावेश है। जो इसमें है वही अन्यत्र है। इससे भिन्न कुछ और नहीं है। महाभारत को विविध सूचनाओं का विश्वकोष भी कहा गया है क्योंकि इसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, साहित्य, पुराण, इतिहास एवं कला सब कुछ विद्यमान हैं। विश्ववाङ्मय का रत्नभूत श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी महाभारत का अंश हैं। विदुरनीति जैसे नीतिग्रन्थ तथा विष्णुसहस्रनाम जैसा पवित्र-पावन स्तोत्र भी महाभारत के ही अंश हैं। वस्तुतः शतसाहस्री संहिता के रूप में विख्यात यह महान् ग्रन्थ भारतीय संस्कृति का एक कालजयी दस्तावेज है।

जातकमालाः- आर्यशूर ने तीसरी-चौथी शती में संस्कृत में जातकमाला की रचना की। इसमें कुल 34 जातक हैं। 'जातक' शब्द का अर्थ है पूर्व जन्म सम्बन्धी कथा। इन जातकों में बोधिसत्त्व के पूर्वजन्म के सद् वृत्तान्तों की कथा सरल, गद्यमय संस्कृत में उपनिबद्ध है। लोक-कल्याण एवं परोपकार की भावना को प्रतिपादित करने वाली इन कथाओं के माध्यम से बौद्ध विद्वान् आर्यशूर ने बौद्ध सिद्धान्तों की स्थापना के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना की है।

मृच्छकटिकः- संस्कृत नाट्य-साहित्य में शूद्रक और उनकी नाट्यकृति मृच्छकटिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व की विभिन्न भाषाओं में इस नाटक का अनुवाद हो चुका है। इस नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके पात्र कालिदास तथा भवभूति के पात्रों की तरह विशुद्ध भारतीय न होकर विश्व के नागरिक हैं। दरिद्र चारुदत्त, सदाचारिणी गणिका वसन्तसेना, वीर शर्विलक तथा उन्मत्त शकार ऐसे

व्यक्ति हैं जो विश्व के हर समाज में मिलते हैं। मृच्छकटिक में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण है।

चरकसंहिता:– चरकप्रणीत यह ग्रन्थ चिकित्साशास्त्र का प्रसिद्ध एवं प्राचीन ग्रन्थ है। इस संहिता में आहार, रोग, रोग-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, भ्रूण-विज्ञान, निदान, विशेष एवं सामान्य चिकित्सा का विज्ञान वर्णित है। यह रचना गद्य एवं पद्य दोनों में है।

भवानीभारती:– महान् क्रान्तिकारी तथा सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत की आजादी हासिल करने का स्वप्न देखने वाले श्री अरविन्द घोष द्वारा 99 पद्यों से युक्त यह खण्डकाव्य सन् 1906 ई. में कलकत्ता के अलीपुर कारागर में लिखा गया था। बालक अरविन्द एक रात स्वप्न में वन्दिनी भारतमाता का प्रत्यक्ष दर्शन भगवती महाकाली के रूप में करता है। वह बेड़ियों में जकड़ी है। भगवती के रूप में भारत माता अरविन्द को लक्ष्य बनाकर अपनी सन्ततिभूता भारतीय जनता को, उसके स्वर्णिम अतीत का स्मरण कराते हुए, स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु प्रेरित करती है। असीम राष्ट्रभक्ति-भावना से पूरित यह खण्डकाव्य स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में जन-जन का कण्ठहार बन गया तथा ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त कर लिया गया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर पुन: इसका प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार हुआ है।

पुरुषपरीक्षा:– 'मैथिलकोकिल' पदवी से विभूषित महाकवि विद्यापति (1350-1452) प्रणीत यह कथाग्रन्थ विविधकोटिक उदात्त आदर्शों की प्रतिष्ठापना करता है। मिथिला-नरेश कीर्तिसिंह, शिवसिंह, पद्मसिंह, नरसिंह, धीरसिंह तथा भैरवसिंह के राज्यकाल में राजकवि के पद पर अधिष्ठित, संस्कृत-प्राकृत-अवहट्ट तथा मैथिली भाषाओं में समान गति से साहित्य-संरचना करने वाले विद्यापति निश्चय ही एक कालजयी साहित्यकार थे। उन्होंने प्राय: उन्नीस ग्रन्थों का प्रणयन किया।

महाराज शिवसिंह देव के निर्देश पर विद्यापति ने दण्डनीति-विषयक कथाकृति **पुरुषपरीक्षा** की रचना की–

तस्य श्री शिवसिंहदेवनृपतेर्विज्ञप्रियस्याज्ञया
ग्रन्थं ग्रन्थिलदण्डनीतिविषये विद्यापतिर्व्यातनोत्।।

पुरुषपरीक्षा के चार परिच्छेदों में क्रमशः आठ, सात, चौदह तथा पन्द्रह कथायें संकलित हैं। चौथे परिच्छेद की कथायें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष शीर्षकों में विभक्त हैं। प्रस्तुत संकलन में स्थानापन्न **दयावीरकथा** पुरुषपरीक्षा के प्रथम परिच्छेद से संगृहीत है। इसमें शरणागत मीर महिमाशाह की रक्षा के लिए सुल्तान अलाउद्दीन के कोपभाजन राव हम्मीर सिंह द्वारा आत्मोत्सर्ग करने का मर्मस्पर्शी वर्णन है।

तदेव गगनं सैव धरा:- उत्कल की पवित्र धरती में 1933 में जन्मे प्रो. श्रीनिवास रथ का सम्पूर्ण जीवन उत्तर भारत के विविध अंचलों में बीता। सर्वाधिक कालयापन उन्होंने भगवान् महाकाल की मोक्षदा पुरी उज्जयिनी में किया जहाँ वह विक्रम विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग में आचार्य एवं अध्यक्ष रहे। व्याकरण, साहित्यादि ग्रन्थों का पारम्परिक ज्ञान प्रो. रथ को अपने विद्वान् पितृचरण से प्राप्त हुआ जो मुरेना के संस्कृत महाविद्यालय में लब्धप्रतिष्ठ आचार्य थे। प्रो. रथ ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. किया।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 1995 ई. में प्रकाशित प्रो. रथ का गीत-संग्रह **तदेव गगनं सैव धरा** अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की एक उत्कृष्ट कृति है जिसमें देशभक्ति, राष्ट्रीय एकता, उद्बोधन, शौर्य, आधुनिक सामाजिक मूल्य तथा भक्तिभावना आदि विषयों से जुड़े 41 गीत हैं जो अत्यन्त सरल, मधुर, लयवाही तथा भावप्रवण हैं। 'विज्ञाननौका' शीर्षक गीत में विज्ञान एवं प्रकृति के बीच सन्तुलन स्थापित करने का संकल्प व्यक्त किया गया है।

रूपरुद्रीयम्:- वाङ्मय की काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा-चारों ही विधाओं में मात्रा एवं गुणवत्ता-दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट रचना करने वाले 'त्रिवेणीकवि' के रूप में प्रतिष्ठित प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जन्म 1943 ई. में जौनपुर जनपद (उ.प्र.) के द्रोणीपुर ग्राम में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र एवं महीयसी अभिराजी देवी के मध्यमपुत्र के रूप में हुआ। इलाहाबाद तथा शिमला विश्वविद्यालयों में अध्यापनरत, बालीद्वीपीय उदयन विश्वविद्यालय (इण्डोनेशिया) में विजिटिंग प्रोफेसर तथा अन्ततः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के यशस्वी कुलपति रहे प्रो.

मिश्र ने अब तक दो महाकव्य, पन्द्रह खण्डकाव्य, छः गीतसंग्रह, दस एकांकी-संग्रह, तीन कथासंग्रह एवं अनेक समीक्षाग्रन्थ प्रकाशित किये हैं।

रूपरुद्रीयम्:- प्रो. मिश्र-प्रणीत ग्यारह एकांकियों का संग्रह है, जिनमें पौराणिक, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक के साथ ही साथ सामाजिक एकांकी भी संकलित हैं जिनमें दहेज-समस्या, दस्यु-उन्मूलन-समस्या तथा जातीय विद्वेष-शमन आदि समस्याओं को समाधान के साथ चित्रित किया गया है। **कन्थामाणिक्यम्** का नायक सोमधर एक ऐसा ही उदात्त पात्र है जो अपनी सदाशयता से अधिवक्ता भवानीदत्त की द्वेषदृष्टि को समाप्त करने में सफल होता है।

गीताञ्जलिः- विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर को गीताञ्जलि के लिए विश्वप्रसिद्ध नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। ये गीत मूलतः बँगला भाषा में लिखे गये थे तथा कालान्तर में अंग्रेजी में अनूदित किये गये थे। आध्यात्मिकता से ओतप्रोत ये गीत मानव संचेतना को किसी परोक्षानुभूति से जोड़ते हैं जो सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान है।

काव्य, नाट्य, कथादि विधाओं में पुष्कल साहित्यसृष्टि करने वाले रवीन्द्र बाबू एक महान् चित्रकार भी थे। शान्ति निकेतन की स्थापना कर उन्होंने भारतीय गुरुकुल-परम्परा को शिक्षा के क्षेत्र में पुनः प्रतिष्ठापित किया। **ईशः कुत्रास्ति** शीर्षकगीत इसी गीतांजलि से संकलित है। इसमें ईश्वर को मन्दिरों में ही नहीं, खेतों-खलिहानों तथा दरिद्रों में भी व्याप्त बताया गया है। वस्तुतः यह जनवादी गीत है।

सत्यशोधनम्:- राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का (1869-1948) लेखन के क्षेत्र में अद्भुत योगदान रहा है। उन्होंने अपनी आत्मकथा सर्वप्रथम अपनी मातृभाषा गुजराती में लिखी तथा पं. श्रीनिवास शास्त्री के सहयोग से स्वयमेव उसका संशोधन भी किया। कालान्तर में विश्व की अनेक भाषाओं में उसका रूपान्तर हुआ। संस्कृत में 'सत्यशोधनम्' शीर्षक से उसका रूपान्तर पण्डित होसकेरे नागप्पा शास्त्री ने किया।

गाँधीजी का एक विशिष्ट संस्मरण उसी आत्मकथा से संकलित है जिसमें उन्होंने श्रवण की पितृभक्ति एवं हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा से प्रभावित होने की बात स्वीकार की है।

पुस्तक के आरम्भ में दी गई इस भूमिका द्वारा छात्रों को संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास के संक्षिप्त इतिहास का परिचय करवाया गया है। इसके साथ-साथ निर्धारित पाठों के मूलग्रन्थ एवं उनसे संबन्धित साहित्यकारों का परिचयात्मक ज्ञान भी इसमें समाविष्ट है। पाठ के आरम्भ में पाठ-संदर्भ दिया गया है जिससे संकलित अंश का प्रसंग सरलता से छात्रों को बोधगम्य हो सके। कक्षा में छात्रों को सीखने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पाठों के अंत में विविध अभ्यास प्रश्न भी दिए गए हैं। पुस्तक में आए छन्दों तथा अलंकारों का परिचय भी परिशिष्ट 1 तथा 2 में दिया गया है।

प्रस्तुत संकलन की पांडुलिपि को तैयार करने के लिए समय-समय पर आयोजित कार्यगोष्ठियों में भाग लेने वाले जिन विषय-विशेषज्ञों एवं संस्कृत अध्यापकों का मार्गदर्शन तथा सहयोग सुलभ हुआ है, संपादक उन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। यद्यपि इस संकलन को यथासंभव छात्रोपयोगी एवं स्तर के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया है तथापि इसे छात्रों के लिए और अधिक उपयोगी बनाने के लिए अनुभवी संस्कृत अध्यापकों के बहुमूल्य सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

शिक्षकों से निवेदन

शिक्षणकार्य में शिक्षण सामग्री के साथ शिक्षणविधि भी महत्वपूर्ण है। अतः शिक्षक-बन्धुओं से निवेदन है कि प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक के पाठों का शिक्षण करते समय निम्नलिखित शिक्षणबिन्दुओं को ध्यान में रखें, ताकि शिक्षण रुचिकर एवं प्रभावोत्पादक हो सके।

1. वेदमन्त्रों के अध्यापन में मन्त्रों का सस्वर वाचन आवश्यक है। वैदिक मन्त्रों में जो शब्द लौकिक भाषा से पृथक् प्रतीत हों, उनकी रचना के विषय में छात्रों को विशेष रूप से अवगत करायें तथा मन्त्रों का पद-पाठ भी स्पष्ट करें। मन्त्रों का अर्थ करते समय अभिधार्थ की अपेक्षा निर्वचन प्रक्रिया से प्राप्त अर्थविशेष को समझाएँ। वैदिक भाषा में उपसर्ग, धातु एवं पदों से पृथक् भी लिखे जाते हैं। अतः मन्त्रों का अर्थज्ञान कराते हुए इसका विशेष ध्यान रखा जाय।

2. **'ऋतुचित्रणम्'** पाठ का अध्यापन करते समय आदिकाव्य रामायण का परिचय छात्रों को अवश्य करायें। पाठगत अनुष्टुप् उपजाति आदि छन्दों का ज्ञान व सस्वर वाचन भी करायें। इस पाठ के अभ्यास में ऋतुसंहार से पद्य दिये गये हैं, उनका भी भाव समझाकर सस्वर पाठ करायें। ऋतुओं पर अन्य भाषाओं में मिलने वाली कविताओं के उदाहरण भी इसके अध्यापन में दिये जा सकते हैं।
3. महाभारत एक उपजीव्य काव्य है, जिसके विषय में कहा गया है, *'यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित्।'* छात्रों को महाभारत का विशिष्ट परिचय देते हुए महर्षि वेदव्यास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से छात्रों को अवगत करायें। **'मानो हि महतां धनम्'** पाठ के माध्यम से छात्रों को नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक करें।
4. बौद्धसाहित्य के अन्तर्गत जातकग्रन्थमाला का विशिष्ट स्थान है। अतः जातक ग्रन्थों का परिचय देते हुए प्रस्तुत कथा **'परोपकाराय सतां विभूतयः'** के माध्यम से सत्य, तप और अहिंसा आदि नैतिक गुणों के प्रति छात्रों में रुचि उत्पन्न करें।
   कथा शिक्षण की विधि का उपयोग करते हुए गद्य का आदर्शवाचन एवम् अनुकरण वाचन का भी छात्रों को अभ्यास करायें।
5. **'सौवर्णशकटिका'** पाठ के माध्यम से रूपक के एक प्रकार का छात्रों को परिचय दें तथा छात्रों में अभिनय कला के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करें एवं अभिनय का अभ्यास करायें। मृच्छकटिक प्रकरण की कहानी रोचक बना कर बच्चों को बतायें। प्रकरण का नायक धीरललित होता है। अतः उसके चारित्रिक गुणों से छात्रों को अवगत करायें।
6. चरक पाणिनि से पूर्ववर्ती लेखक हैं। अतः शब्दों का केवल व्युत्पत्तिपरक अर्थ न लेकर भावप्रधान अर्थ को प्राथमिकता दें। प्रस्तुत पाठ **'आहारगुणाः'** के माध्यम से आहार की गुणवत्ता एवं स्वास्थ्यवर्धक भोजनप्रक्रिया छात्रों को अपनाने पर बल दें।
7. **'सन्ततिप्रबोधनम्'** पाठ का अध्यापन करते समय महान् दार्शनिक

एवं राष्ट्रभक्त महर्षि अरविन्द के जीवनदर्शन से छात्रों का परिचय करायें। छात्रों में राष्ट्रभक्ति की भावना को जागृत करें।

8. **विद्यापति** मैथिली भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। इनकी संस्कृत में भी अनेक रचनाएँ हैं। अतः प्रस्तुत **'दयावीरकथा'** के शिक्षण के समय छात्रों को रचना की ऐतिहासिकता एवं गद्यात्मकता से अवगत करायें। अलाउद्दीन खिलजी और हम्मीर के विषय में यह कथा किन तथ्यों से परिचित कराती है–इस पर विचार करते हुए छात्रों को इतिहास बोध की दृष्टि से साहित्य के अध्ययन की दिशा में प्रेरित करें।
9. विज्ञान वरदान के साथ अभिशाप भी है। प्रस्तुत कविता **'विज्ञाननौका'** के माध्यम से छात्रों को ज्ञान और विज्ञान के विवेक से परिचित करायें।
10. गुण गुणज्ञों के द्वारा ही जाने जाते हैं। आधुनिक प्रसिद्ध कवि अभिराज प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने **'कन्थामाणिक्यम्'** एकांकी में दर्शाया है कि गुणी कहीं भी उत्पन्न हो सकता है। प्रस्तुत पाठ के माध्यम से संस्कृत में रचे जा रहे नये साहित्य से छात्रों को अवगत करायें कि संस्कृत आज भी जीवन्त भाषा है।
11. अन्यान्य भाषाओं से भी अनूदित संस्कृत रचनाएँ आजकल प्रचुर रूप में उपलब्ध हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर की विख्यात रचना गीताञ्जलि का अनुवाद उक्त तथ्य को प्रमाणित करता है। प्रस्तुत रचना **'ईशः कुत्रास्ति'** का शिक्षण करते समय छात्रों को श्रमशीलता के प्रति जागरूक करें। प्रस्तुत गीतिका के गायन का कक्षा में अभ्यास करायें। रवीन्द्रनाथ की संस्कृत में अनूदित अन्य रचनाओं को पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें।
12. गाँधीजी की आत्मकथा का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया है। संस्कृत भाषा में **'सत्यशोधनम्'** के नाम से प्रकाशित आत्मकथा में मातृभक्ति, पितृभक्ति, सत्यनिष्ठा आदि गुणों का चित्रण किया गया है। पाठ के आधार पर छात्रों द्वारा गाँधीजी के गुणों का चित्रण कराया जाय।



भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः

पुरोवाक्		*v*
भूमिका		*ix*
प्रथमः पाठः	वेदामृतम्	1
द्वितीयः पाठः	ऋतुचित्रणम्	6
तृतीयः पाठः	परोपकाराय सतां विभूतयः	13
चतुर्थः पाठः	मानो हि महतां धनम्	20
पञ्चमः पाठः	सौवर्णशकटिका	25
षष्ठः पाठः	आहारविचारः	31
सप्तमः पाठः	सन्ततिप्रबोधनम्	36
अष्टमः पाठः	दयावीर-कथा	43
नवमः पाठः	विज्ञाननौका	50
दशमः पाठः	कन्थामाणिक्यम्	56
एकादशः पाठः	ईशः कुत्रास्ति	68
द्वादशः पाठः	गान्धिनः संस्मरणम्	73
परिशिष्ट		
	1. छन्द	78
	2. अलङ्कार	82
	3. अनुशंसित ग्रन्थ	86

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।